आक्रोश

(षष्ठ सर्ग)

वीर छन्द

हुआ भेरियों का भैरव रव, डिण्डिम का बढ़ता था घोष ।
वीरों की हुंकारें ज्ञापित, करती थीं प्रचण्डतर जोश ।
चला उमड़ता दल अर्णव[१] सा, अम्बर[२] तक उठती थी धूल ।
आज शत्रु की नियति रुठकर, हो बैठी मानों प्रतिकूल ।।१।।

रथ चक्रों का वेग अनारत, गजयूथों का चरणाघात ।
सहकर कम्पित थी अति वसुधा, हय टापों से थी उत्खात ।
काली आँधी सी उठती थी, क्षितिज पताकाओं से लाल ।
लप-लप करती जीभ निकाले, बढ़ा आ रहा था ज्यों काल ।।२।।

कुन्त श्रेणि की द्युति से दीपित, होता था वह रज का मेघ ।
प्रतिक्षण बढ़ता ही जाता था, भीति जनक उसका वह वेग ।
चिन्तित हुए युधिष्ठिर कहने, लगे पार्थ से देखो तात ।
प्रत्यावर्तन विजित चमू का देखो बड़ी अनोखी बात ।।३।।

सभी दिशाओं में भागी थी, सेना जभी गिरे आचार्य ।
हो परन्तु वह पुनः संगठित, बढ़ी आ रही परम अवार्य ।
कौन चमू का है सेनानी, सिंहनाद करता जो वीर ।
अम्बर को भी कम्पित करता, चला आ रहा है रणधीर ।।४।।

जिसके जन्म समय पर हर्षित गुरु ने गो सहस्र का दान ।
दिया द्विजों को वही पुत्र है, उनका दूजा जैसे प्राण ।
धरती पर गिरते ही जिसने, उच्चैःश्रवा[३] अश्व सा शब्द ।
घोर किया जैसे गरज़े हों, प्रलय काल के गाढ़े अब्द[४] ।।५।।

हुई गम्भीर गगन वाणी तब, अश्वत्थामा होगा नाम ।
इस बालक के बल विक्रम का, हो सकता किसको अनुमान ।
जिसको दी सारी विद्याएँ, विद्यावारिधि ने हो प्रीत ।
देव-दानवों यक्ष किन्नरों, को जो सकता हँसकर जीत ।।६।।

ज्ञानाकर धृत वाग्मिता, गतियुत सबल सुवृत्त ।
ओजस्वी यति प्रिय सदा, अनय क्षयार्थ प्रवृत्त ।।७।।

कौशल रीति पटुत्व युत, सगुण उदात्त सुवर्ण ।
अश्वत्थामा ने किए मानी सकल विवर्ण ।।८।।

अक्षौहिणी प्रमाण दनुज दल, का कुछ पल में ही संहार ।
कर डाला जिसने रुद्रोपम[५], धर कर दुर्निरीक्ष्य[६] आकार ।
अपने बल विक्रम कौशल का, विद्या का जिसको है भान ।
आज क्रुद्ध है अर्काङ्गज[७] सा, सुनकर पूज्य पिता अपमान ।।६।।

नहीं आज इसके अमर्ष से, पार्षत का हो सकता त्राण ।
मिलकर भी न बचा सकते हम, द्रुपदात्मज के जाते प्राण ।
बड़ा भयावह हो जाता है, अग्रज सौम्य व्यक्ति का क्रोध ।
उद्धत है कृपीज लेने को, पितृ घात का कटु प्रतिशोध ।।१०।।

घनाक्षरी

हो गया विकार ग्रस्त चित्त हन्त! आर्य का भी ,
घात गुरुदेव का प्रलुब्ध हो कराया है ।
जीतने का अर्थ खो गया समग्र अग्रजात ,
दुर्निवार लोभ ने विवेक को हराया है ।
द्रौणि अट्टहास ने न कौरव अनीकिनी ने,
तात पाप कर्म के विपाक ने डराया है ।
आज भान हो रहा कि राज्य की अवाप्ति हेतु,
लुब्ध व्यक्ति का नहीं स्वकीय या पराया है ।।११।।

सत्वमूर्ति और तप के प्रतीक कुम्भजात[८],
स्नेह की सुधा से अभिषिक्त करते रहे ।
सर्वश्रेष्ठ हमको बनाने में निरत रहे,
ज्ञान की अशेष राशि रिक्त करते रहे ।
शत्रु पक्ष से लड़े परन्तु करुणा का भाव,
हम सब बन्धुओं के हेतु धरते रहे ।
एक भी विनाशकारी अस्त्र न विमुक्त किया,
लक्ष लक्ष क्षत्रियों के प्राण हरते रहे ।।१२।।

गुरु को भी शत्रु हम पाण्डुजात मानते हैं,
दक्षिणा में छल और मृत्युदान देते हैं ।
धर्म हेतु युद्ध की दुहाई मात्र देते तात,
स्वार्थ हेतु क्षुद्र हो अधर्म पक्ष लेते हैं ।
सम्पदा के हेतु रक्त वाहिनी में त्याग खेद,
शस्त्र पतवार से अकीर्ति नाव खेते हैं ।
एक एक करके विनष्ट उनको ही किया,
जिन महामानवों के सर्वदा चहेते हैं ।।१३।।

कुछ काल भोग लें भले ही वसुधा का राज्य,
नियत हमारा आज हुआ नर्क वास है ।
त्याग हेतु पाण्डु वंश था प्रसिद्ध विश्व मध्य,
आज वही वंश इन्द्रियों का क्रीत दास है ।
धर्म पालनार्थ आपकी सहिष्णुता में आर्य,
देखते ही देखते हुआ अपूर्व ह्रास है ।
सत्य ही कहा है लोभ स्रोत पाप पंक का है,
और कल्मषों[९] का चिरकाल से निवास है ।।१४।।

द्विज ने तो पुत्र से भी श्रेष्ठ समझा सदैव,
प्रतिदान कैसा हमने दिया है प्रीति का ।
देखा था तुम्हारी ओर सुनके अलीक[10] वाद,
कैसे गला घोंट दिया आपने प्रतीति[11] का ।
देखते रहे तटस्थ क्लीव से हुए थे हम,
प्रतिकार क्यों नहीं किया तभी अनीति का ।
तर्क आपका न कोई सुनना मुझे है आज,
शूल के समान चुभता है वाक्य नीति का ।।१५।।

निन्दनीय कृत्य में प्रवृत्त हम हो चुके हैं,
भिन्नता रही है कहाँ सौवलीय[12] नीति से ।
साध्य मात्र देखते हैं शुचिता न साधनों की,
हो गये अतीत चित्त घोर पाप भीति से ।
हेम राशि दीखती है रत्नराशि भ्राजमान,
पाण्डुपुत्र सोचने लगे नवीन रीति से ।
लोभ है वयस्य[13], स्वार्थ मूल मन्त्र, अर्थ नहीं,
पाण्डवों को नीति से न प्रीति से प्रतीति से ।।१६।।

भारती चमू को द्रोण-हीन करके अनाथ,
सोचते हैं आप कृतकृत्य हम हो गये ।
करके कुकर्म धर्महीन यश से विहीन,
दास लोभ के अनीतिभृत्य हम हो गये ।
मूल से विनष्ट हो चुके हैं मानवीय मूल्य,
और चिरकाल से सँजोये सत्य खो गये ।
भासता मुझे है कोप-मूढ़ता में धृष्टद्युम्न,
दुर्निवार नाश के विषाक्त बीज बो गये ।।१७।।

धृष्टद्युम्न ने कहा सुनो प्रवीर पाण्डु पुत्र,
शत्रु का विनाश रणभूमि बीच धर्म है ।
अपने पिता के वध का लिया है प्रतिशोध,
आप कहते हैं क्षुद्र निंदनीय कर्म है ।
आपके हितार्थ प्राण पण से हूँ जूझ रहा,
लेके असि हाथ चर्म[१४] और दृढ़ वर्म[१५] है ।
छोड़ के मनस्विता में झेल रहा भर्त्सना को,
भगिनी का प्रेम ही सहिष्णुता का मर्म है ।।१८।।

छोड़ दीर्घ श्वास शिर थाम पार्थ मौन हुए,
वाष्प-रुद्ध-कण्ठ कुछ और न कहा गया ।
धृष्टद्युम्न धृष्टता विलोक रोषयुक्त हुए,
वीर शिनि[१६] पौत्र से परन्तु न रहा गया ।
बोले गर्जते हुए अरे कलङ्क युक्त मूढ़,
कैसे नीच कृत्य तेरा युद्ध में सहा गया ।
वीरता का शीश आज लाज से झुका अतीव,
दीप्त क्षात्र धर्म पाप पंक में नहा गया ।।१९।।

दोनों नर वीर हो गये नितान्त क्रुद्ध और,
उग्रता बढ़ा रही थी वेग ही विवाद का ।
बोले कृष्ण शान्त भीम दोनों को करो सवेग,
आपसी लड़ाई स्त्रोत हो नहीं विषाद का ।
क्षिप्रता[१७] से कौरवों का दल बढ़ा आ रहा है,
क्षम्य है न काल को शतांश भी प्रमाद का ।
द्रौणि अति क्रुद्ध है निरुद्ध करना है उसे,
कारण बने न पाण्डवेय अवसाद[१८] का ।।२०।।

जान आपदा अदूर-वर्तिनी हुई महान,
सज्जित हुए प्रवीर त्याग के विरोध को ।
पाण्डु पक्ष के समस्त वीर तीर तीक्ष्ण लिए,
दौड़ चले यान चढ़े शत्रु के निरोध को ।
देख पाण्डवी चमू विवृद्धमन्यु[१९] द्रौणि हुआ,
बाण वृष्टि से किया सुव्यक्त दीप्त क्रोध को ।
धृष्टद्युम्न को विलोक लोक अन्य भेजने को,
हो उठा अधीर वीर तात - प्रतिशोध को ।।२१।।

मराल छन्द

हुए कुछ क्षण को शान्त कृपीज,
निमीलित-लोचन हो करबद्ध ।
मंत्र पढ़कर अति शीघ्र उपांशु[२०],
ध्यान में डूब गये निःशब्द ।
देव दानव को भी दुर्वार,
भक्ष्य थे जिसके सारे भूत[२१] ।
सभी योद्धाओं को अज्ञात,
किया नारायणास्त्र आहूत ।।२२।।

दिव्य अनिवार्य अमोघ महास्त्र,
प्रकट था ज्यों वैवस्वत रूप ।
उग्र भास्वर वह परम असह्य,
डरे सहसा विलोक सब भूप ।
चला झञ्झा के साथ समीर,
भयावह फिर छाया तम घोर ।
व्योम था अघन तथापि अभीक्ष्ण,
गर्जना होती थी चहुँ ओर ।।२३।।

देखकर सब हो गये हताश,
डोर जीवन की लगती क्षीण ।
चकित थे और अशान्त विमूढ़,
महारथ सारे अस्त्र प्रवीण ।
इधर यदि था नभ परम अशान्त,
महोदधि उधर हुआ विक्षुब्ध ।
बढ़ा अपनी मर्यादा तोड़,
करी भू आप्लावित हो क्रुद्ध ।।२४।।

उमड़ती चलीं कान्त से दूर,
वाहिनीं[२२] होकर वहीं प्रतीप[२३] ।
तरणि[२४] का मन मानो था म्लान,
उगे क्रमशः प्रदीप्त उडु दीप ।
हुई अचला[२५] भी कम्पित आशु,
प्रलय से ज्यों होकर भयभीत ।
चूर्ण हो गिरे तुङ्ग गिरि श्रृंग,
काल की विस्तृत होती जीत ।।२५।।

उछलने लगे क्रूर वन सत्व,
मुदित हो गरज रहे क्रव्याद[२६] ।
उधर आच्छादित था अति पीन[२७]
मनुज के मन पर हा अवसाद ।
बना पाण्डव दल को निज लक्ष्य,
दिया दिव्यास्त्र द्रौणि ने छोड़ ।
व्यथा से अब था केवल त्राण,
मीचु की मिले दीर्घ-तम क्रोड़ ।।२६।।

दिशाएँ हुईं अग्निशरं पूर्ण,
गिरीं उल्काएँ नभ से तूर्ण ।
तप्त गिरते लोहे के पिण्ड,
सैन्य के अङ्ग कर रहे चूर्ण ।
गदाएँ होतीं अम्बर क्षिप्त,
प्रकट थे बहु- धारायुत चक्र ।
क्षिप्र था प्रकट मृत्यु का नृत्य,
भ्रकुटि थी वैवस्वत की वक्र ।।२७।।

इधर भैरव रव करता अस्त्र,
उधर क्रन्दनरत नर- समुदाय ।
दौड़ते किंकर्तव्य - विमूढ़,
त्राण का दिखता नहीं उपाय ।
तड़पते थे भू-लुण्ठित वीर,
प्राण होते थे आशु विलीन ।
महायोद्धा भी साहस -भग्न,
दीखते थे अति दीन मलीन ।।२८।।

हुए अग्रज तब बहुत अधीर,
देखकर दल का घोर बिनाश ।
भीति से भरे नितान्त निराश,
गये सत्वर अर्जुन के पास ।
देखकर नर को वहाँ रथस्थ,
शान्त मुद्रा में और तटस्थ ।
युधिष्ठिर करने लगे प्रलाप,
देर तक रह न सके प्रकृतिस्थ ।।२९।।

कहा पाञ्चाल वीर-गण और,
सोमको करो तुरन्त प्रयाण ।
छोड़ दो हमें नियति पर आज,
बचाओ अपने - अपने प्राण ।
वृष्णि अन्धकवंशी भी क्षेत्र,
छोड़ दें यह इस वेला धर्म ।
करें या फिर सकरुण यदुनाथ,
बचाने हेतु हमें कुछ कर्म ।।३०।।

बन्धुओं सहित शीघ्र यह वह्नि,
जला देगी न हमें सन्देह ।
दह्यमाना उर्वी[२८] को छोड़,
त्रिदिव[२९] में होगा अपना गेह ।
पार्थ निष्क्रिय बैठे हैं आज,
हुए गुरु के वध से अप्रसन्न ।
कष्ट जन का न उन्हें कुछ ज्ञात,
यहाँ तो प्रलय हुई आसन्न ।।३१।।

पाण्डवेयों को माना पुत्र,
सत्य है उनको थी अति प्रीति ।
रहे क्यों मौन सदा आचार्य,
हुई जब हम पर घोर अनीति ।
सभा में पाञ्चाली का प्रश्न,
हुआ उत्तरित न क्यों था आर्य ।
विमानित होती अबला देख,
शान्त क्यों रहे अस्त्र आचार्य ।।३२।।

सप्तवीरों में थे गुरु द्रोण,
अकेला घेरा था सौभद्र[३०] ।
रचा था किसने चक्रव्यूह,
कहाते रहे किन्तु वे भद्र ।
तुम्हारा प्रण सुनकर भी घोर,
बचाया सैन्धव[३१] को सप्रयास ।
न होते आच्छादित यदि अर्क[३२],
आर्कि[३३] गृह होता आज निवास ।।३३।।

हुए सस्मित आनन वार्ष्णेय[३४],
आर्त कौन्तेय वाग्मिता[३५] देख ।
नहीं अजमीढ़ वंश की लुप्त,
अभी वह विशद भाग्य की रेख ।
कहा नारायणास्त्र है दिव्य,
सदा इसका प्रक्षेप अमोघ ।
न होगा बल कौशल से न्यून,
विभीषण ज्वालाओं का ओघ ।।३४।।

सभी योद्धागण डालो अस्त्र,
कवच भी करो गात्र से दूर ।
शरण में जाओ जोड़े हाथ,
बनो मत इसके सम्मुख शूर ।
करो गज तुरगों से अवरोह,
यान से उतरो सारे तूर्ण ।
युद्ध का मन से भी संकल्प,
किया होगा विनाश सम्पूर्ण ।।३५।।

न्यस्त - आयुध होकर अतनुत्र[३६],
भूमि पर खड़े जोड़कर हाथ ।
पण्डुवाहिनि के सारे वीर,
हुई यह आज अनूठी बात ।
अकेले भीम रहे रणमग्र,
न मानी उस मानी ने बात ।
उग्र होता जाता था अस्त्र,
अनल का वर्धित हुआ निपात ।।३६।।

चलाया अर्जुन ने वरुणास्त्र,
भीम की रक्षा हेतु सवेग ।
घिरे थे ज्वालाओं के बीच,
मित्र दल में था अति उद्वेग ।
गये माधव नर ज्वाला बीच,
यान से नीचे खींचे भीम ।
कहा केशव ने उन्हें सक्रोध,
मूढ़ता क्यों दे रहे असीम ।।३७।।

निरायुध योद्धा खड़े अवर्म[३७],
विनतशिर लिए समर्पण भाव ।
हुआ क्रमशः प्रशान्त दिव्यास्त्र,
अहा शरणागति का सुप्रभाव ।
विकट ज्वालाएँ हुई अदृश्य,
धरा अम्बर ने पुनः प्रसाद ।
पवन था शीतल और सुमन्द,
गया जनमानस से अवसाद ।।३८।।

धराये सबसे आयुध वर्म,
किए प्रतियोधी सर्व विनीत ।
बचे वे जो शरणागत हुए,
प्रकट थी द्रौणायनि की जीत ।
देखकर रिपुदल का परित्राण,
सुयोधन मन में हुआ अधीर ।
सविस्मय बोला हे गुरुपुत्र,
बचे कैसे अरिदल के वीर ।।३६।।

खीझ कर बोले द्रोण कुमार,
बताया हरि ने त्राण उपाय ।
नाश था निश्चित आज समूल,
कृष्ण हो गये सपल[३९] सहाय ।
किन्तु जो त्याग चुके हों शस्त्र,
अकवचित रण से जो मुँह मोड़ ।
पलायनरत या शरणापन्न,
आर्य उनको देते हैं छोड़ ।।४०।।

पराजित है अरि दल सब भाँति,
समर्पित हुए सकल रणधीर ।
मान जिनका हो गया विनष्ट,
मरे वे केवल खड़े शरीर ।
वीर फिर से छोड़ो दिव्यास्त्र,
शेष रिपुदल का हो क्षय तूर्ण ।
कहा कुरुपति ने हे द्विज श्रेष्ठ,
विजय की अभिलाषा हो पूर्ण ।।४१।।

कहा गौतमी-तनय ने मित्र,
पुनः होता न अस्त्र-सन्धान ।
हुआ ऐसा तो करता अस्त्र,
प्रयोक्ता का क्षय शत्रु समान ।
किया तब सेना ने जयघोष,
सभी के मन में था अति हर्ष ।
गौतमी-सुत की अद्‌भुत विजय,
कर रही कौरव-दल उत्कर्ष ।।४२।।

वीर छन्द

हुआ उपशमित देख अस्त्र को, सिंह-पुच्छ[३६] केतन को क्रोध ।
देख द्रुपद अङ्गज को रण में, ज्वलित हुआ मन में प्रतिशोध ।
दौड़े द्रौणायनि मारे शर क्षुद्रक पहले अरि के बीस ।
वेगवान फिर और पाँच शर, मारे देख रहे अवनीश[४०] ।।४३।।

पार्षत ने भी शर वर्षा की, सारथि अश्व किए अवलीढ़[४१] ।
किन्तु द्रौणि तो आज हुए थे, अति अधृष्य होकर अरिपीड ।
क्षिप्र क्षुरों से काटा धनु भी, और ध्वजा अरि की थी ध्वस्त ।
पीड़ा से पाञ्चाल रह सका, नहीं देर तक तब प्रकृतिस्थ ।।४४।।

मारे अश्व द्रौणि ने उसके, किया सारथी यान विहीन ।
भाग चले पाञ्चाल वीर सब, होकर बाण व्यथा से दीन ।
देख दशा बढ़ चले बचाने, धृष्टद्युम्न को वे शैनेय ।
जिनकी पृथित कीर्ति पृथ्वी पर, शौर्य सदा है जिनका गेय ।।४५।।

अश्वत्थामा से उनके फिर, रण में हुए घात प्रतिघात ।
ढ़ँका वीर द्विज बाण जाल से, नहीं सूझती कोई बात ।
आए कौरव महारथी तब, आगे बढ़े द्रौणि त्राणार्थ ।
किन्तु प्रयास वीर सात्यकि ने, उनके किए आशु ही व्यर्थ ।।४६।।

कृप कृतवर्मा और सुयोधन, को मारे कुछ तीखे बाण ।
क़र्ण दुशासन भी न कर सके, द्रोणतनय का कुछ परित्राण ।
अति लाघव से सभी महारथ, उसने किये आशु रथहीन ।
जता दिया सात्यकि ने वह है, महाविक्रमी युद्ध प्रवीण ।।४७।।

तब युयुधान[४२] वधार्थ क्रोधयुत, आए द्रोणाङ्गज रणधीर ।
किन्तु कहा सात्यकि से हँसकर, यद्यपि हो सच्चे तुम वीर ।
धृष्टद्युम्न प्रति मत पालो तुम, हो उन्मादी इतना मोह ।
पाञ्चालों का और सोमको, का सहना है तुम्हें विछोह ।।४८।।

कितनी भी तुम शक्ति लगा दो, नहीं बचेंगे उनके प्राण ।
जिस पर रोष किया मैंने उस, जन का नहीं कहीं परित्राण ।
भास्कर कर[४३] सम लिया अनुत्तम, शर कर में फिर किया विमुक्त ।
सात्वत[४४] गिरा अचेतन रथ में, कवच हुआ शित बाण विभक्त ।।४९।।

वेगवान वह बाण वेध वपु, त्वरित हुआ भूमध्य प्रविष्ट ।
देख दशा सात्यकि की समझे, सभी हुआ यह महा अनिष्ट ।
हटा लिया सारथि ने रथ को, गया द्रौणि रथ से वह दूर ।
मर्माहत था आज अप्रतिरथ, भूमण्डल का अप्रतिम शूर ।।५०।।

तब अश्वत्थामा ने झट से, धृष्टद्युम्न के मारा तीर ।
मस्तक में जो घुसा प्रपीड़ित, रथ पर ही गिर पड़ा प्रवीर ।
लगी सभी को जीवन आशा, पार्षत की होती अब क्षीण ।
उसकी रक्षा को दौड़े तब, पाँच महारथ युद्ध प्रवीण ।।५१।।

पार्थ बढ़े बलवान भीम भी, पौरव वृद्धक्षत्र रणधीर ।
चला चेदि युवराज सुदर्शन, मालवेश थे अनुपम वीर ।
लिया घेर गौतमीपुत्र को, पाँच पाँच मारे शित बाण ।
सबके एक साथ काटे शर, कौशल का दे दिया प्रमाण ।।५२।।

एक साथ सब महारथी कर, रहे वीर पर घोर प्रहार ।
किन्तु मानता कभी केशरी गजदल से घिर कर क्या हार ।
घायल हुआ उरग सा उस क्षण, छोड़ रहा था वह फुफकार ।
और प्रचण्ड हुआ सहसा तब रण का महाक्रूर व्यापार ।।५३।।

कृष्ण और अर्जुन को घायल, किया भीम के मारे बाण ।
मालवेश पौरव भी पाते, नहीं आशुगों[४५] से अव त्राण ।
इषुत्रय[४६] छोड़ा द्रौणायनि ने, भू पर गिरे मालवानाथ ।
दोनों कटीं भुजाएँ शिर भी उड़ता गया विशिख के साथ ।।५४।।

फिर पौरव को आहत करने, हेतु चलायी दृढ़ रथ शक्ति ।
चूर्ण किया रथ महाबली ने, दर्शायी अति अद्भुत युक्ति ।
चन्दन चर्चित दोनों बाहें, काटीं वेगवान इषु मार ।
एक भल्ल से शीश उड़ाया, खोया पौरव ने आकार ।।५५।।

अब बारी थी चेदि युवा की, इन्दीवर[४७] सी जिसकी कान्ति ।
महावली जो रण में अरि प्रति, नहीं धारता था कुछ क्षान्ति ।
घोड़ों सहित सूत को पहले, पहुँचाया द्विज ने यमलोक ।
निशित विशिख से भेदा अरि को, दिया चेदियों को गुरुशोक ।।५६।।

तीन महारथ मरते देखे, हुआ भीम को परम अमर्ष ।
कहा द्रौणि से तुझे मार कर, अग्रज को दूँगा अब हर्ष ।
करने लगे बाण वर्षा वे, अपने दीर्घ धनुष से घोर ।
काटे बाण शत्रु के काटी, शित[४८] क्षुरप्र से धनु की डोर ।।५७।।

लिया अन्य धनु द्रोणाङ्गज ने, की बाणों की ही बरसात ।
दोनों ही वे महाबली थे, बढ़ते गये घात प्रतिघात ।
चले तीक्ष्ण नाराच भीम के, गये द्रौणि हँसली को वेध ।
ध्वजादण्ड को थाम वेदना, का करते हठकर प्रतिषेध ।।५८।।

किन्तु शीघ्र ही सजग हुए वे, रक्तिम हुई कोप से दृष्टि ।
अति उदग्र मार्गण[४६] की करने, लगे वृकोदर पर घन वृष्टि ।
काटे बाण भीम ने रिपु के, शरधारा का दिया प्रसाद ।
किन्तु द्रौणि भी कभी न करते, रण में देखे गये प्रमाद ।।५६।।

सारे बाण निवारित करके, किए बहुत क्षत-विक्षत भीम ।
रहे अविचलित वहाँ वृकोदर, बल था उनमें अतुल असीम ।
काटा धनुष भीम का उसने, पाण्डव ने फेंकी रथ शक्ति ।
उल्का सी वह चली घूमती, डरे उपस्थित सारे व्यक्ति ।।६०।।

किन्तु काटकर उसे शरों से, दी निज कौशल को अभिव्यक्ति ।
द्रौणि धनुर्विद्या के आकर, शस्त्रों में उनकी अनुरक्ति ।
मारा बाण विदीर्ण हुआ क्षण, भर में भीमसूत का भाल ।
गिरा वहीं निश्चेतन होकर, स्यन्दन[५०] रखता कौन सँभाल ।।६१।।

अनियंत्रित हो भागे घोड़े, गया भीमरथ रण से दूर ।
उनकी विषम पराजय दल के, रहे देखते सारे शूर ।
शंख बजाकर अश्वत्थामा, जता रहा निज जय पर हर्ष ।
भीत गए पाञ्चाल भागते, हुआ भारतीदल उत्कर्ष ।।६२।

घनाक्षरी

आहत थे पाण्डव अनीक[५१] के प्रधान वीर,
भासमान आज द्रोण पुत्र का प्रताप था।
हर्षनाद गूँजता था कौरवों के सैन्य वीच,
वर्धमान तीव्रता से शत्रुओं का ताप था।
होते थे प्रतीत यमदण्ड के समान वाण,
प्राणहारी शार्ङ्ग या पिनाक द्रौणि चाप था ।
रेणु पूर्ण अम्वर था वीर थे पलायमान,
घायल चमूचरों[५२] का गूँजता विलाप था ।।६३।।

द्रौपदेय दल को न सोमकों को रोक पाये,
चित्त पार्थ का अतीव आज रोषयुक्त था ।
विस्मित हुए विलोक कौशल कृपीज का वे,
हेतिज्ञान[५३] का अशेष दिव्य कोष मुक्त था ।
जाग उठी तीव्र प्रतिद्वन्द्विता असूया और,
क्षात्र असहिष्णुता का भाव जो प्रसुप्त था ।
कहने लगे कुवाद मान्य गुरु पुत्र से भी,
धर्मनिष्ठ पार्थ कोप से अनीतियुक्त था ।।६४।।

ब्रह्मबन्धु आज अस्त्र ज्ञान तेरा देखता हूँ,
हरता हूँ दिव्य - अस्त्र - ज्ञान - जात गर्व को।
गुरु - पुत्र जान और द्विजता को देख नित्य,
मान्यता प्रदान करता रहा सुखर्व[५४] को ।
वेदना का स्रोत बनता सदैव क्रूर व्यक्ति,
मान दिया जाता जो समाज में अनर्ह[५५] को ।
आज पराभूति ही प्रदान करता हूँ जैसे,
शक्र[५६] ने महावली क्षपाट[५७] वृष-पर्व[५८] को ।।६५।।

मन्यु - युक्त - आनन कृपीज थे षडानन से,
शस्त्र का पुजारी तत्व जाने क्या अथर्व का ।
अस्त्र ज्ञान तात से लिया करे कटूक्तिपात,
घात तो दिखा हरुँ अशेष अंश गर्व का ।
कौन व्यक्ति राम को दिखाता अस्त्र का पटुत्व,
मापता है कौन मूढ़ दीप्त धाम शर्व[५६] का ।
आज भासता मुझे कि ध्यान तुम्हें आ रहा है,
वीत शोक धाम अन्तरिक्ष में सुपर्व[६०] का ।।६६।।

द्रुत ही चलाया द्रोण-पुत्र ने दुरन्त अस्त्र,
उतरा वसुन्धरा पर मानो मार्तण्ड था ।
द्युति के ही बाद घोर घोष था सुनायी दिया,
चित्रभानु[६१] भानु के समान ही प्रचण्ड था ।
हुआ परिवृत्त पाण्डवेय का समग्र सैन्य,
ज्वालमाल युक्त कुरुक्षेत्र का प्रखण्ड था ।
मानो त्रिपुरारी ने चलाया हो अमोघ अस्त्र,
या कि दण्डधारी[६२] कोपजात घोर दण्ड था ।।६७।।

द्युति को विलोक सैकड़ों हुए थे दृष्टिहीन,
सुनने की शक्ति गयी रव विकराल था ।
पीला लाल काला वर्ण चारों ओर दीखता था,
जातवेद[६३] का असह्य फैला केशजाल था ।
सूझता न त्राण का उपाय भागते थे वीर,
वर्धमान ताप से सभी का बुरा हाल था ।
मानो मन्युयुक्त रुद्र हो गये विशेष आज,
सर्व प्राणियों का जैसे आया अन्तकाल था ।।६८।।

अस्त्र - शस्त्र फेंक भी न पाये उस यन्त्रणा में,
वर्मयुक्त वीरों के शरीर जलने लगे ।
अपने सखा को आया देख रणबीच वहाँ,
हृष्ट वायुदेव वेगयुक्त चलने लगे ।
पैरों को रगड़ते थे ह्रेषमाण[६४] अश्ववृन्द,
गजराज शुण्ड भूमि पै ही मलने लगे ।
जलते शताङ्ग[६५] दीखते थे चारों ओर वहाँ,
हो के अति तप्त धातु अंग गलने लगे ।।६६।।

दह्यमान[६६] दल देख दीर्ण उर पार्थ का था,
शस्त्र शौण्ड[६७] वीर किन्तु आज निरुपाय था ।
था अमोघ ओर अनिवार्य द्रौणि का महास्त्र,
त्रस्त वैरि का समग्र वीर समुदाय था ।
एक अक्षौहिणी प्रमाण था प्रदग्ध सैन्य,
दैन्य का प्रसार था, विनाश था, अपाय[६८] था ।
कौन अब किसको सहाय करता प्रदान,
आर्त थे समस्त, हर वीर असहाय था ।।७०।।

मराल छन्द

देख भीषिका नाश की व्याप्त,
विलोका माधव ने नर ओर ।
चढ़ाया गाण्डीवी ने अस्त्र,
खिंची तत्क्षण उस धनु की डोर ।
निवारित करने अरि का शीघ्र,
विनाशक वह अमोघ दिव्यास्त्र ।
व्योम में उठा गरजता तूर्ण,
चला कपि-केतन[६९] का ब्रह्मास्त्र ।।७१।।

विषम ज्वाला पुञ्जों को चीर,
प्रकट था अक्षत नन्दीघोष ।
शेष दल कृष्णार्जुन को देख,
लगा करने हर्षित जयघोष ।
अनाहत देख कृष्ण कौन्तेय,
हुआ द्रौणायनि[७०] के मन रोष ।
बहुत उस घटना पर आश्चर्य,
विफलता पर था अति आक्रोश ।।७२।।

अस्त्र विद्या पर था सन्देह,
हुए क्या अब दिव्यास्त्र सदोष ।
हुआ क्या मिथ्या सारा ज्ञान,
व्यर्थ है शर विद्या का कोश।
फेंक धनु रण से चले कृपीज,
बड़ा ही मन में भरा विराग ।
नहीं क्या भौतिक वैरि शरीर,
जलाती नहीं आयुधी आग ।।७३।।

विफल था गुरुतर वह उद्योग,
वीर था आज अतीव निराश ।
छोड़ता चला दीर्घ निःश्वास,
मार्ग में मिले महामुनि व्यास ।
हुआ ऋषि के सम्मुख नतशीश,
हुआ मिथ्या क्यों मेरा ज्ञान ।
अस्त्र क्यों रहे मोघता[७१] धार,
लोक में व्यतिक्रम[७२] हुआ महान ।।७४।।

कहा ऋषि ने न मृषा तव ज्ञान,
किन्तु तुम रहे नहीं पहचान।
जिन्हें था करने चला प्रदग्ध,
उन्हें तू नर नारायण जान।
धर्मसुत होकर जन्मे पूर्व,
हुए नारायण गुरु तप लीन।
हुआ उस पर-ब्रह्म से ऐक्य,
जगत मन करण अहं प्रविलीन ।।७५।।

प्रकट तब हुए स्वयंभू रुद्र,
जगत के कारण वे भूतेश[७३]।
सदा शिव शंकर[७४] लोकों हेतु,
शूल[७५] हर भूतिद प्रीत महेश।
किए नारायण अनुपम धाम,
दिए दुर्लभ वर उन्हें प्रभूत।
नहीं उनके बल के क्षुद्रांश,
त्रिलोकी के मिलकर सब भूत ।।७६।।

जगत के पालन हेतु सदैव,
बचाने हेतु धर्म का सार।
वही नारायण करुणावान,
लोक में लेते हैं अवतार।
वही नारायण हैं वे कृष्ण,
धृष्टता इनके प्रति है त्याज्य।
अहेतुक[७६] करुणा करते नित्य,
कृपा सब भूतों पर अविभाज्य ।।७७।।

सुनी पाराशर की जब बात,
मिटा अभिमान और अवसाद।
बुद्धि थिर हुई मनीषा दीप्त,
चित्त में प्रसरित हुआ प्रसाद।
मिला सद्गुरु से ऐसा बोध,
लिए नारायण थे पहचान।
हुए नतमस्तक तत्क्षण द्रौणि,
त्याग कर द्रोह और अति मान।।७८।।

लगे फिर सत्यवती के सूनु,
बताने अर्जुन का भी भेद।
पार्थ हैं नर ऋषि के अवतार,
अतः मानो मत मन में खेद।
और तुम भी शिव भक्त महान,
रहे हो जन्मान्तर में तात।
किया तुमने भी अर्जित ज्ञान,
लिए पञ्चानन[७७] से वर व्रात।।७९।।

दिया ऋषि ने मङ्गल आशीष,
रहे अश्वत्थामा नतशीश।
अगोचर हुए तुरन्त मुनीन्द्र,
चले सब शिविरों को अवनीश।।
हुए द्रौणायनि चिन्तामग्न,
राजनिष्ठा गुरुतर या धर्म।
भीष्म ने और तात ने नियत,
किया क्या साधु कर्म का मर्म।।८०।।

धर्म प्रतिमुख हम सब लड़ रहे,
रहा मन में न और सन्देह।
नयेतरपथ[७८]अनुसर्त्ता सभी,
प्रेष्य[७९] हैं प्रसभं[८०] अर्कज[८१] गेह।।
नियतपरिभवरण है यह यदपि,
महोद्यम - रत रहना कर्तव्य ।।
प्रथम ही चुना असत का पंथ,
अंतभय अनुशय[८२] परिहर्तव्य ।।८१।।

दोहा

हेति ज्ञान सुप्रयोग का, कहाँ गया संकल्प ।
त्याग विप्रता कर चुके हिंसा कर्म अनल्प ।।८२।।

शार्दूलविक्रीडित

पीड़ा दायक है अतीव नरता को युद्ध में झोंकना ।
क्षुद्रों के अभिमान की बलि चढ़े देखो महावीर हैं ।
भोगेगी फल धारिणी[८३] मनुज के गम्भीर दुष्कर्म का ।
खो देंगे सब कोश सञ्चित अहा दुष्प्राप्य विज्ञान का ।।८३।।

सन्दर्भ सूची

१. समुद्र, २. आकाश, ३. सागर मंथन से प्राप्त इन्द्र का घोड़ा, ४. बादल, ५. रुद्र शिव की भाँति, ६. जिसे देखना भी कठिन हो, ७. सूर्य पुत्र यमराज, ८. द्रोणाचार्य, ९. पाप, १०. असत्य वचन, ११. विश्वास, १२. शकुनि सम्बन्धी, १३. मित्र, १४. गेडे की खाल से बनी ढाल, १५. कवच, १६. सात्यकि, १७. शीघ्रता, १८. विषाद, १९. वर्धित कोप वाला, २०. विना ध्वनि के जाप जिसमें केवल ओठ हिलें, २१. प्राणी, २२. नदी, २३. विपरीत, २४. सूर्य, २५. पृथ्वी, २६. मांसभक्षी पशु, २७. घना, भारी, मोटा, २८. पृथ्वी, २९. स्वर्ग, ३०. अभिमन्यु, ३१. जयद्रथ, ३२. सूर्य, ३३. सूर्य पुत्र यमराज, ३४. श्री कृष्ण, ३५. वाक् पटुता, ३६. विना कवच के, ३७. बिना कवच के, ३८. शत्रु, ३९. अश्वत्थामा, ४०. राजा, ४१. घायल, ४२. सात्यकि, ४३. किरण, ४४. सात्यकि, यादव वंशी वीर, ४५. बाण, ४६. तीन बाणों का समूह, ४७. नील कमल, ४८. पैना, तीक्ष्ण, ४९. वाण, ५०. रथ, ५१. सेना, ५२. सैनिक, ५३. अस्त्र ज्ञान, ५४. बौना, ५५. अपात्र,

५६. इन्द्र, ५७. राक्षस, निशाचर, ५८. राक्षस राज वृषपर्वा, ५६. शिव जी, ६०. देवता, ६१. अग्नि, ६२. यमराज, ६३. अग्नि, ६४. हिनहिनाते हुए, ६५. रथ, ६६. जलता हुआ, ६७. शस्त्र प्रवीण, ६८. हानि, ६६. अर्जुन, ७०. अश्वत्थामा, ७१. असत्यता व्यर्थता, ७२. उलट फेर, ७३. सचराचर के स्वामी शिव, ७४. कल्याण करने वाले, ७५. त्रिशूल धारी पीड़ाहारी, ७६. अकारण, ७७. शिव जी, ७८. अनीति पथगामी, ७६. भेजने योग्य, ८०. वलपूर्वक, ८१. यमराज, ८२. दुःख, पश्चाताप, ८३. पृथ्वी।